International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(4): 22-23

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(4): 22-23
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 30-03-2015
Accepted: 25-04-2015

आसुतोष सती
शोधच्छात्र,संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली

Correspondence
आसुतोष सती
शोधच्छात्र,संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली

भरत की दृष्टि में अभिनेता की स्वतन्त्रता

आसुतोष सती

नाटक समाज की अनुकृति है, समाज का दर्पण है, आनन्दानुभूति का साधन है, रसोत्पादक है,सभी काव्यों में मनोरम है, रमणीय है, इस सन्दर्भ में ष्काव्येषु नाटकं रम्यम्ष यह आभाणक अत्यन्त प्रचलित है।

भरत मुनि नाट्यशास्त्र के प्रणेता है। जिन्होंने ब्रह्मा के आदेश से ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर एक अद्भुत (नाट्यशास्त्र) ग्रन्थ की रचना की। नाट्यशास्त्र में ३६ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में नाटकीय तत्त्वों की विस्तृत चर्चा मिलती है। आठवें अध्याय से अभिनय,उसके गुण,अभिनेता तथा उसके लिये आवश्यक निर्देशों का वर्णन हमें देखने को मिलता है। यद्यपि सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र में मौलिक रूप से अभिनेता की स्वेच्छा (स्वतन्त्रता) पर विस्तृत विचार नहीं मिलते तथापि भरत की बातों को गम्भीरता से समझकर यह कहा जा सकता है कि वे अभिनेता को देश,काल तथा परिस्थिति को ध्यान में रखकर स्वेच्छा या तत्काल के अनुकूल स्वतन्त्रता की बात अवश्य स्वीकार करते हैं।

अभिनय

नाट्यशास्त्र के आठवें अध्याय से लेकर लगभग इक्कीसवें अध्याय के अन्त तक अभिनय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन देखने को मिलता है।

आठवें अध्याय में अभिनय तथा अभिनय के प्रकारों का वर्णन है। पुनः तेरहवें अध्याय में लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी अभिनय का वर्णन किया गया है तथा २१वें अध्याय में सामान्य अभिनय की विशद चर्चा मिलती है।

अभिनय को परिभाषित करते हुये भारतीय काव्यशास्त्र नामक ग्रन्थ में चौधरी लिखते हैं ष्अभिनय उस कृत्य को कहते हैं, जिसके द्वारा (अभीष्ट) विषय सामाजिकों के सम्मुख साक्षात् रूप से प्रस्तुत किया जाता है ष[1]

आचार्य विश्वनाथ अभिनय को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं ष्भवेत् अभिनयः अवस्थानुकारःष[2] अर्थात् नटों के द्वारा वास्तविक पात्रों की अवस्था का अनुकरण करने को अभिनय कहते हैं।

आचार्य भरत के अनुसार अभिनय अभि उपसर्ग पूर्वक नी नये धातु से निष्पन्न होता है। अर्थात् अभिनय वह है जो रस तथा भाव की दृष्टि से दर्शकों आगे की ओर ले जाये।

अभिपूर्वस्तु णीञ् धातुराभिमुख्यार्थ निर्णये,
यस्मात् प्रयोगं नयति तस्मादभिनयः स्मृतः।।[3]

अभिनेता

रंगमंच,रंगपीठ या नाटक में नायक से लेकर कञ्चुकी,चेट,विट तक सभी पात्र अभिनेता कहलाते हैं। यहाँ तक की रंगमंच पर पर्दे को उठाने और गिराने वाला पात्र भी अभिनेता

कहलाता है। अभिनेता दो प्रकार के होते हैं। स्त्री पात्र और पुरुष पात्र ।

ष्अभिनेता, अनुकर्ता या नट उसे कहते हैं, जो अपने अभिनय (अनुकरण)द्वारा अनुकार्य(राम आदि)और प्रेक्षक के बीच सम्बन्ध स्थापित करके प्रेक्षक को रसास्वाद प्राप्ति का कारण बनता हैष[4] निष्कर्षतः अभिनेता से हमारा अभिप्राय नाटकीय संविधान में नाट्याभिनय करने वाले पात्रों से है। जिसमें नायक,नायिका,खलनायक आदि सभी पात्र सम्मिलित हैं।

अभिनेता की स्वतन्त्रता

यद्यपि भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र के ३६ अध्यायों में कहीं पर भी अभिनेता की स्वतन्त्रता का प्रतिपादन स्पष्टतः प्राप्त नहीं होता है। तथापि बीच-बीच में उनकी बातों से अभिनेता की स्वतन्त्रता परिलक्षित होती है।

भाषा की स्वतन्त्रता

नाट्यशास्त्र के सत्तहरवें अध्याय में तत्-तत् पात्रों के लिये तत्-तत् प्राकृतों का विधान करते हुए भी आचार्य भरत ने अन्ततः देशभाषा प्रयोग में प्रयोक्ता को स्वतन्त्रता का विकल्प भी दिया है।

अथवा छन्दतः कार्या देशभाषा प्रयोक्तृभिः।
नानादेशसमुत्थं हि काव्यं भवति नाटके।।[5]

देशकाल की स्वतन्त्रता

नाटक के लिये पात्रों को देश काल का विचार नहीं करने पर बल दिया है, साथ ही यह कहा गया है कि भर्ता उन्हें जैसा आदेश दे संशय रहित होकर वैसा ही उन्हें प्रयोग करना चाहिये।

अथवा देशकालौ च न परीक्ष्यौ प्रयोक्तृभिः।
यथैवाज्ञापयेद् भर्ता तदा योज्यमसंशयम्।।[6]

मण्डप(रंगमंच) की स्वतन्त्रता

भरतमुनि के अनुसार किसी भी रंगमंच पर कोई सा भी नाटक प्रस्तुत किया जा सकता है। वह रंगमंच विकृष्ट,चतुरस्त्र,त्रयस्त्र में से कोई सा भी हो सकता है।

गायन की स्वतन्त्रता

सत्ताईसवे अध्याय में पात्रों द्वारा किये जाने वाले गायन के विषय में स्वतन्त्रा की बात मिलती है। जैसे निशाद अंश के साथ गांधार अंश का प्रयोग पात्र करे या न करे इसके लिये वह स्वतन्त्र है।

पात्रचयन की स्वतन्त्रता

३२वें अध्याय में आचार्य भरतमुनि निर्देशक को स्वतन्त्रता देते हैं कि वे जिस पात्र में नाटकीय पात्र के गुण देखे उसे वे अभिनय के लिये चुन सकते हैं।

आचार्यः पात्रजांश्चैव गुणान् ज्ञात्वा स्वभावजान्,
ततः कुर्याद् यथायोगं नृणां भूमि निवेशनम्।।[7]

शुभावसर पर अभिनय की स्वतन्त्रता

३६ वें अध्याय में भरत लिखते हैं कि किसी भी शुभ अवसर यज्ञ,पुत्रोत्सव,विवाहोत्सव आदि में मंगल के रूप में अभिनय किया जा सकता है।

प्रकाशमेतदिच्छामोभूयस्तत् सम्प्रयोजितम्।
तिथियज्ञक्रियास्वेतद् यथा स्थान्मङ्गलैः शुभैः।।[8]

लोक प्रमाण की स्वतन्त्रता

२३वें अध्याय में भरत स्वीकार करते हैं कि नटों को लोक प्रमाण को आधार मानकर नाट्याभिनय (मञ्चन) करना चाहिये।

तस्माल्लोकप्रमाणं हि विज्ञेयं नाट्ययोक्तृभिः।[9]

निष्कर्षतः नाटक रसानुभूति का साधन है। लोक की अनुकृति है। आदर्शों का अभिनय रूप है। इसलिये उसे नियमों में सर्वथा नहीं बाँधा जा सकता है।

अभिनेता नाटक को सरस,सुबोध तथा सहज बनाने के लिये समाज के अनुकूल कार्य कर सकता है। लेकिन सम्पूर्ण अभिनय समाज के अनुकूल ही नहीं अपितु नाटक और नाटककार के भावों के अनुकूल होना अनिवार्य है। इसलिये कहा जा सकता है कि भरत की दृष्टि में अभिनेता अभिनय के लिये सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। देश कालादि कुछ विशेष परिस्थितियों में वह स्वतन्त्र भी है ।।

संदर्भ–

1. भारतीय काव्य शास्त्र,पृ.सं. ६७७
2. साहित्यदर्पण,षष्ठ परिच्छेद,श्लोक सं. २
3. नाट्यशास्त्र, अध्या. ८, श्लोक सं. ६
4. भारतीय काव्य शास्त्र पृ.स. ६७७
5. नाट्यशास्त्र, अध्या. १७ श्लोक सं.४७
6. नाट्यशास्त्र अध्या. २७ श्लोक सं. ९७
7. नाट्यशास्त्र, अध्या.३२ श्लोक.१
8. नाट्यशास्त्र, अध्या. ३६ श्लोक सं. २१
9. नाट्यशास्त्र, अध्या. २५ श्लोक. १२३